ISSN : 2319-8095
Progressive Research Journal
Vol.1 No.1 December 2012

अथर्ववेद वर्णित पर्यावरण एवं मानव अन्तःसम्बन्ध/सहगम्यता

रेनुका सी*
डॉ. पुत्तूलाल मि**

अथर्ववेद के एकादश काण्ड के छन्द आठ के अनुसार देवी–स्वरूपा पृथ्वी, एक पर्यावरणीय त्वचा रूपी (आवरण) अपने संरक्षण के लिए धारण किये हुए है। पृथ्वी के जीव–जगत् के सन्दर्भ में वैसी ही पर्यावरणीय परिवृत्ति तथा सकल जीव–जगत् को प्रत्येक ओर से घेरे रहती है। फिटिंग्स महोदय के शब्दों में, इस परिवृति या परिस्थि मानव सहित सभी जीवधारियों की अपनी– अपनी त्वचा से बाहर के सभी तथ्य, वस्तुएं, परिस्थितियाँ और ग सम्मिलित होती हैं, जिनकी सनातन क्रियाएं, प्राणी–जगत् के सभी जीवधारियों के जीवन–विकास को प्रभावित है । मनुष्य के सन्दर्भ में, परिवृत्ति के रूप में पर्यावरण की अनुभूति, आज से लगभग 11 लाख वर्ष के रूप में अप से चलने–फिरने वाले मानव द्वारा की गयी होगी प्राकृतिक, पर्यावरण और मानव जीवन के शाश्वत् अन्तःसम्ब नितान्त प्राचीन सत्य को, पाश्चात्य जगत् द्वारा मूलतः वारेनियस (1650), कान्ट(1724–1804), हम्बोल्ट(1769–1 रिटर (1779–1859), रेटजेल (1844–1904) तथा सैम्पुल आदि के अनुसंधानों एवं लेखनों के माध्यम से जान होगा। किन्तु भारतीय समाज, संस्कृति और जीवन–प्रणाली में पर्यावरण और मानव के अन्तःसम्बन्ध, साहित्य में कई हजार वर्ष पहले समाहित कर दिये जाने के अनेक प्रमाण उपलब्ध है ।

वैदिक मनीषियों ने पर्यावरणीय परिवृत्ति का विस्तार, द्यौ–लोक से लेकर पृथ्वी पर सक्रिय सभी प्राक घटकों तथा शक्तियों तक माना है और सभी घटकों अथवा तत्वों से शक्ति और कल्याण हेतु प्रार्थना की है, जि प्रबल प्रमाण, यज्ञ से जुड़ा शन्ति–प्रकरण है जिसके अन्तर्गत, "ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः, पृथ्वी शान्ति शन्तिरोशधयः शन्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विस्वेदेवाः, शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः, सर्व शान्तिः, शन्तिरेव शान्तिः, सा मा शान्ति शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः।" कहा गया है । इस शान्ति–पाठ में द्यौ–लोक एवं अन्तरिक्ष–लोक के साथ साथ पृथ्वी- के जल–मण्डल, औषधि–रस और वानस्पतिक घटकों तथा वायुमण्डलीय चर–अचर तत्वों से प्रार्थना की गई है हमारे मानव– समुदाय के लिए शान्तिप्रद और कल्याणप्रद बने रहें। ये सभी घटक या तत्व हमारे मानव–समा विकास, कल्याण और वितरण के लिए उत्तरदायी रहे हैं और सदैव रहेगें। इस शाश्वत् सत्यता की विस्तृत व अथर्ववेद के द्वादश काण्ड के भूमि–सूक्त में सविस्तार उपलब्ध है ।

इस सूक्त को पृथिवी/माता –भूमि सूक्त भी कहा जाता है, और इसी सूक्त में सभी प्रकार के भूतों (जीवधा को पृथिवी माता की सन्तान माना गया है। सूक्त में भूमि के भौतिक पर्यावरण की विशेषताओं और उनके समायो मानवीय प्रयासों का भी उल्लेख है। यह सूक्त मानव–समाज में राष्ट्रीय भावना तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की मान्यता विकसित, पोषित एवं फलित करने के अत्यन्त उपयोगी उपाय भी सुझाता है । इसीलिए इस सूक्त को माता –भूमि भी कहा जाता है। इस ही पृथिवी/भूमि सूक्त के मन्त्र 12 में स्पष्ट रूप से "माता भूमि : पुत्रो अहं पृथिव्या। पर्जन्य स उ नः पिपर्तु।" कहा गया है, जिसका अर्थ है कि यह धरती/ पृथिवी ग्रह (Earth Planet) हमारी माता है, और ह जीवधारी (भूत) उसके पुत्र हैं।

पर्जन्य अर्थात् उत्पादक–प्रवाह (Life Supporting Systems) हमारे पिता है (Singh, 1987)।

* प्रवक्ता,मुंशी रघुनन्दन प्रसाद सरदार पटेल महिला महाविद्यालय, बाराबंकी
** प्रवक्ता भूगोल, किसान पी०जी० कालेज, बहराइच

Scanned with OKEN Scanner

प्रस्तुत सूक्त में भूमि का अर्थ भारतीय उप-महाद्वीप के धरातल से है, जो पृथ्वी के सम्पूर्ण जल-मण्डल और स्थल-मण्डल का एक अंग मात्र है, जो अपने अस्तित्व के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी की सनातन घटनाओं पर आश्रित है।

पाश्चात्य पर्यावरणविदों ने भी पृथ्वी को The Mother Earth (भू-माता अथवा धरती माता) कह कर वैदिक अवधारणा एवं अभिव्यक्ति को ही स्वीकार किया है। वर्ष 1991 में यू0एस0ए0 के कुछ पर्यावरणविदों ने प्रतिवर्ष 22 अप्रैल को पृथ्वी-दिवस (Earth-Day) के रूप में मनाने की उद्घोषणा की। भौतिक पर्यावरण और मानव-साहचर्य के पाश्चात्य-कार्यक्रमों को वैदिक अवधारणों से सम्बद्ध करने के मन्तव्य से, वर्ष 1993 में भारतीय विद्वानों ने अथर्ववेद के द्वादश काण्ड में वर्णित भूमि-सूक्त की अनुशन्साओं को अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण समिति को स्व0 मदर टैरेसा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यह सार्वभौमिक रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि प्रकृति से हटकर मनुष्य अपनी प्रगतिशीलता को आगे नहीं बढ़ा सकता है। मूलरूप से प्रकृति ही मनुष्य को सभी साधन उपलब्ध कराती है। अस्तु मानव और प्रकृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। अमेरिकी पर्यावरण विदुशी मिस एलेन चर्चिल सैम्पुल ने पृथ्वी (प्रकृति) और मानव के बीच माता और पुत्र का सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा है । मनुष्य धरातल की उपज है। वह पृथिवी का बच्चा है और उसकी धूल का कण मात्र है। पृथ्वी माता ने उसका पालन-पोषण किया है, उसके लिए कर्तव्य निश्चित किये हैं, उसके विचारों को निश्चित दिशाओं की ओर मोड़ा है। वह उसकी हड्डी और मज्जा में तथा उसके मस्तिष्क और आत्मा में प्रवेश कर गई है। मिस सैम्पुल का उपरोक्त मत, भूमि-सूक्त के 12वें श्लोक में वर्णित माता भूमिः पुत्रो अहं पृथव्या पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु। पर ही आधारित माना जा सकता है। इसी प्रकार 15वें श्लोक में स्वीकार किया गया है कि हे भूमि माता! आपसे उत्पन्न और आपके ऊपर विचरण करने वाले प्राणियों, दोपायों, चौपायों सभी का आप पालन-पोषण करती हैं। सूर्यदेव अपनी अमृतस्वरूपी रश्मियों को जिनके लिए चारों ओर विस्तारित करते हैं, ऐसे हम पांच प्रकार के मनुष्य, (विद्वान, शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार और सेवा धर्मरत) आपकी ही सन्तति हैं । मन्त्र 35 में संकेत है कि मानव-जाति अपने अनुसंधानों, औषधि-कन्द संग्रह ,बीजारोपण तथा खनिज-उत्खनन, भवन-निर्माण, कारखानों आदि के माध्यम से पृथ्वी को क्षत-विक्षत करने को उतारु है। सूक्त का मंत्र हमें हृदय-हीन होने से रोकता है । अथर्ववेद के द्वादश काण्ड में भूमि यानि प्रकृति के नियमों को बताया गया है। यहाँ भूमि का तात्पर्य, भारत की सीमा से है, जिसके उत्तर में हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ और दक्षिण में हिन्द महासागर स्थित है (Mukherji, R.K.) । हिन्दू कर्म-काण्ड पर आधारित सांस्कृतिक कर्मपालन हेतु कराये जाने वाले संकल्प में मातृ-भूमि की विश्व में काल-गत तथा स्थान-गत स्थिति वर्णित है। **वैवस्वतमन्वन्तरे, भूर्लोके, जम्बू द्वीपे, भारतवर्षे, भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते** द्वारा मातृ-भूमि की स्थिति निश्चित की गई है, तथा **सत्प्रवृत्ति-संवर्द्धनाय ,दुष्प्रवृत्ति-उन्मूलनाय, लोककल्याणाय, आत्मकल्याणाय, वातावरण परिस्काराय, उज्जवल भविष्य कामनापूर्तये, संकल्पम् अहं करिश्ये।** के द्वारा यज्ञ तथा मांगलिक आयोजन करने का तात्पर्य (मन्तव्य) स्पष्ट किया गया है । (गायत्री हवन विधि पेज 19)

इस संकल्प का उद्देश्य यह भी है कि वातावरण (पर्यावरण) की रक्षा किये बिना हम लोक-कल्याण, आत्म-कल्याण एवं उज्जवल भविष्य की कामना नहीं कर सकते हैं । अथर्ववेद का भूमि-सूक्त हमें पर्यावरण के विभिन्न घटकों (द्यौ-लोक एवं अन्तरिक्ष-लोक और पृथ्वी – लोक की औषधियों, वनस्पतियों, जलराशियों ,सनातन भौतिक शक्तियों और गतिविधियों) के संरक्षण हेतु यज्ञादि मानव-धर्म का विस्तृत निर्देशन भी करता है। भूमि-सूक्त में वर्णित वैदिक परिकल्पनाओं, सत्यताओं और सर्वाण्गीर्णता को, आधुनिक पर्यावरणविदों द्वारा प्रस्तावित रूप-रेखा (श्रेणियों एवं तत्वों) के अनुरुप, वर्गीकृत करते हुए, प्रत्येक तत्व-समूह के विषय में भूमि-सूक्त में दिये गये विवरणों को, इस शोध-परक लेख में संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

(क) वायु मण्डलीय तत्त्व

भूमि–सूक्त मे वायुमण्डल के सभी तत्त्वों की सनातन उपस्थिति तथा उनके महत्व को बताया गया है। द्यौ–लोक के घटकों मे ब्रह्माण्ड की निहारिकाएँ, उल्काएँ और सूर्य से निःसृत परार्बैंगनी (Infra – Red) किरणों का जाल पाया जाता है। आकाश–मण्डल अथवा अन्तरिक्ष–लोक मे पाये जाने वाले ग्रह–उपग्रह वायुमण्डलीय विक्षोभ, चक्रवात, चुम्बकीय क्षेत्र आदि की घटनाएँ हमारी प्रकृति को सदैव प्रभावित करती हैं।

भूमि–सूक्त मे प्रार्थना एवं कामना की गई है कि सूर्य की किरणें हमारे (मानव) निमित्त प्रजाओं और वाणी का पोषण करें। हमारी मातृभूमि हमे मधुर पदार्थ और स्वास्थ्य, प्रदान करें । द्यौ–लोक में सूर्य देव के रूप मे अग्निदेव ही सब ओर प्रकाशित होते है, विशाल अन्तरिक्ष भी उस प्रकाश स्वरूप अग्नि से आलोकित है तथा घृत को चाहने वाले अग्निदेव ही मनुष्य–लोक को अनुप्रणित करते हैं । भूमि की पूर्व–पश्चिम आदि चारों दिशाओं, चारों उपदिशाओं, तथा नीचे और ऊपर की दस दिशाओं में विचरण करने वाले चर–अचर तत्व एवं शक्ति–प्रवाह हमारे लिए कल्याणकारी हों ।

इस पृथ्वी लोक मे ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर और वसन्त नामक छह ऋतुओं के दिन और रात सभी तरह से हमारे लिए सुखप्रद हों। हमारी पृथ्वी के अधोमण्डल अथवा परिवर्तन–मण्डल (ट्रॉपोस्फीयर) मे मातरिश्वा नामक पवन–धाराएँ, धूलिकणों को उड़ाकर ग्रीष्मकालीन ऑधियॉं पैदा करती हैं और पेड़ो को उखाड़ देती है। कभी–कभी इन वायु–धाराओं की तीव्रता से तापमान मे तात्कालिक परिवर्तन हो जाते हैं यही पवन राशियॉं, ग्रीष्मकालीन वर्षा का कारण भी बनती है । हमारी मातृ–रूपा पृथ्वी पर स्थाई रूप से पायी जाने वाली द्यौ–लोक तथा अन्तरिक्ष–लोक की निहारिकाओं मे से उत्पन्न नक्षत्रो तथा सूर्य से बने ग्रहों का आकर्षण, प्रकाश एवं ताप तथा निम्न अन्तरिक्ष सक्रिय मेघ वर्षा तथा आर्द्रता के रूप में प्राप्त जल आदि पर्यावरणीय तत्वों ने, हम सभी प्राणी–जगत् और विशेषकर मानवीय समुदाय को धरातल पर चलने और विस्तृत होने की शक्ति एवं प्रेरणा प्रदान की है, जिसके वशीभूत हमारा मानव–समुदाय अति प्राचीन काल से अनुपयुक्त पर्यावरण वाले क्षेत्रों को छोड़कर अनुकूल पर्यावरण वाले क्षेत्रों की तलाश में गति (भ्रमण) तथा स्थानान्तरण करता रहा है। प्रसिद्व फ्रांसीसी मानव–भूगोलवेत्ता ब्लाश ने मनुष्य की इसी विचरणशीलता को महत्त्व देते हुए, उसे इस पृथ्वी के प्रत्येक भाग में अतिप्राचीन अतिथि के रूप में निवास करते हुए माना है ।

(ख) स्थलजात तत्व

विश्व के सभी जीवों का पोषण करने वाली, सम्पदाओं तथा खनिजों से युक्त सबको प्रतिष्ठित करने वाली वैश्वानर प्राणाग्नि का भरण–पोषण करने वाली, यह भूमि अग्रणी बलशाली होने के कारण हम सबको अनेक प्रकार से धनधारण कराने वाली रही है । हमारी मातृ–भूमि आकाश और पृथ्वी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवन पोषक प्रवाहों से युक्त रही है, और चिरन्तर भविष्य में इसी प्रकार प्राणिमात्र की निवास–स्थली और पोषिका बनी रहेगी, इस निमित्त मानव–समाज में भी उसके प्रति कृतज्ञता बनी रहेगी। हमारी मातृ–भूमि की हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियॉं एवं अन्य स्थलाकृतियॉं हमारे लिए सुखदायी रही हैं । असितवर्ण से पृथ्वी में स्थित अग्निदेव ही हमें प्रकाश और तेजस्विता से संयुक्त करते रहे है । इस भूमि की ऊपरी परत के रूप में उर्वरा मृदा एवं धूल, शिलाखण्ड एवं पत्थर हैं, और इसके गर्भ में स्वर्ण रत्नादि अमूल्य खनिज पदार्थ हैं । भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट आदि के कारण हिलती हुई गतिशील भूमि में वही अग्नि (उर्जा) स्थित है, जो जल के अन्दर है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती हुई दैनिक गति करती है। भौरे की तरह हिलती और अन्तरिक्ष में चक्कर काटती हुई वार्षिक गति करती है इन दोनों गतियों के परिणाम स्वरूप क्रमशः दिन और रात तथा ऋतुएं पैदा होती है, और ऋतुओं के अनुरूप कृषि फसलें उगती हैं और खाद्य अन्न प्राप्त होते हैं। भूमि–सूक्त मे पृथिवी की वार्षिक गति के बारे मे स्पष्ट उल्लेख है कि वह सूर्य के चारों तरफ अपने वार्षिक परिक्रमण काल मे ब्रह्माण्ड के अनेक तत्वों और शक्तियों से प्रभावित होने के कारण कम्पित होती रहती है। इस कम्पन और वेग के बीच एक सन्तुलन प्राकृतिक नियमों (इन्द्रदेव) के वशीभूत स्थापित रहता है। सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित पृथ्वी का भाग स्वर्ण–पिण्ड जैसा

Scanned with OKEN Scanner

प्रतीत होता है और सौर्य ऊर्जा पाकर पृथ्वी का वक्षस्थल सृष्टि का स्रोत एवं आधार बनता है। पृथ्वी पर प्राप्त सौर्य ऊर्जा ही दृश्यमान (दिखने वाली) वनस्पति ,कृषि फसलों और प्राणी जगत के जीवन का मूल स्रोत है । गुरूत्वाकर्षण शक्ति को धारण करने की क्षमता से युक्त पृथ्वी पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्यों को सहन करती हुई उत्तम जल देने वाले स्रोतो (विशेषकर मेघो) तथा सूर्य की किरणों से अपनी मलिनता का निवारण करके सूर्य के चारों ओर विशेषरूप से गमन करती है । पृथ्वी हमें अपनी कल्याणकारी चितवृत्ति से प्रिय धामों (सांस्कृतिक–केन्द्रो) में प्रतिष्ठित करती है । हमारी मातृ–भूमि अपने अनेक गृहस्थलो में हीरे , जवाहरात , मणि , सोना–चाँदी , आदि की अपार तथा बहुमूल्य खनिज सम्पदाओं को धारण करने वाली है और हमारे मानव समाज को सभी आवश्यक भोग्य पदार्थ गाय के दूध देने के समान ही प्रदान करती रही है। हमारी कामना है कि ऐसी धनप्रदात्री, जीवन वर दायिनी, दैवीस्वरूपा पृथ्वी हमारे लिए ऐश्वर्य का आधार बनी रहे कभी कुपित न होवे।

यद्यपि पृथ्वी पर उत्पादित होने वाले अजैविक एंव जैविक पदार्थ पृथ्वी पर ही वास करते हैं, फिर भी अपनी–अपनी क्रियाओं के तारतम्य में एक दूसरे के ऊपर धूमकण, उड़ाने जैसा ही आंशिकप्रदूषण पैदा करते हैं। किन्तु यह पृथ्वी अपनी सृजनशीलता के कारण सदैव प्रसन्नता दायिनी, रही है और विश्व रक्षक वनस्पतियों और औषधियों का उत्पादन करती रही है । हमारी मातृ–भूमि अपने गर्भ में खनिज सम्पदाओं और अपने वक्षस्थल पर मानव को जीवन प्रदान करने वाली वनस्पति और कृषि फसलों का स्थाई आधार है । भूमि–सूक्त मे कामना की गई है कि उसके मानव उपयोगी और प्राथमिक उत्पादों एवं जीवनदायक प्रवाहों की सुरक्षा, जिस प्रकार से हमारे पुरखों द्वारा यज्ञादि करके की जाती रही है वही क्रम भविष्य मे भी बना रहे। पर्यावरण के वायुमण्डलीय एवं स्थलजात तत्वों का जो दोहन और शोषण आज के मनुष्य ने किया है और पृथ्वी को (Earth on Fire) (दहकती हुई पृथ्वी) की स्थिति तक पहुँचा दिया है वैसा भूमि–सूक्त लिखे जाने तक कभी नहीं हुआ था ।

(ग) जलीय तत्व

हमारी मातृ–भूमि मे विस्तृत जल–मण्डल, सागर–महासागर, विभिन्न जल–राशियाँ (झरनें , नदियाँ , झीलें , तालाब ,कुएँ) आदि जल संसाधन रहे हैं जिनके कारण मानव–समुदाय एवं अन्य जीवधारी सुखपूर्वक जीते चले आये हैं। ऐसी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोग्य– पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली रहे। हम मातृ–भूमि की प्रतिष्ठा बनाये रखें ताकि हमारे सभी जल–संसाधन हमारे स्वस्थ जीवन के लिए अक्षुण्ण रहें । मातृ–भूमि की सततप्रवाहिनी ,स्वच्छ जल से युक्त नदियों जैसे गंगा ,यमुना ,सरस्वती , दृशद्वती तथा सिन्धु आदि की अक्षुणता की कामना करते हुए उन्हे प्रदूषण रहित होने की प्रार्थना की गई है। वर्तमान समय मे जल ही जीवन है के सन्देश के माध्यम से जिस जीवन–प्रवाह के प्रति जागरूकता पैदा की जा रही है, उसी प्रकार की शाश्वत् भावना भूमि–सूक्त मे निहित है। ज्ञातव्य है कि वैदिक कालीन आर्यावर्त मे उपरोक्त नदियों ने देव–संस्कृति को विकसित होने के आधार प्रदान किये थे जिनका उल्लेख पुराणों तथा कामायनी में है।

(घ) जैवीय तत्व

भूमि–सूक्त मे जैवीय तत्वों के अन्तर्गत तृण –पौधे–वृक्ष ,सूक्ष्मजीव , कृषि–कीटाणु, पशु–पक्षी आदि क वर्णन इस प्रकार से है कि हे मातृ–भूमि! आपसे उत्पन्न और आपके ऊपर विचरण करने वाले प्राणियों, दोपायो ,चौपायं सभी का आप पालन पोषण करती हैं। जिस मातृ–भूमि में विभिन्न पादक–वर्ग, वृक्ष और लता आदि सदा स्थिर रहत है जो वृक्ष–लतादि औषधिरूप में सबकी सेवा सम्पन्न करती है ऐसी वनस्पति धारणी और सर्वपालन कर्त्री, धरती क हम शीश झुकाकर स्तुति करते हैं । जिस भूमि में उत्पन्न कृषि के अन्तर्गत धान, तिल, जौ, आदि खाद्य–पदार्थ प्रचु मात्रा मे पैदा किये जाते रहे हैं, जिस भूमि में निश्चित समय पर जलवृष्टि का लाभ पाकर अन्नादि का प्रचुर उत्पाद होता रहा है, पर्जन्य से जिसका पोषण होता रहा है, ऐसी वत्सला मातृ–भूमि के प्रति हमारा नमन है । भूमि–सूक्त घातक तथा हिंसक जीवो जैसे साँप–बिच्छू आदि का भी उल्लेख है, जिनका दंश ,प्यास और दाह पैदा करने वाला

Scanned with OKEN Scanner

जिनके काटने पर शरीर पर दाने उठ आते हैं। वर्षा ऋतु में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले घातक जीव तथा रेंगने वाले विषैले जन्तु, कभी हमारा स्पर्श न करे। जो प्राणी समूह हमारे लिए कल्याणकारी हों, वे हमें सुख प्रदान करे । हे मातृ–भूमि! जो जंगली पशु ,पुरूषभक्षी सिंह ,बाघ आदि जंगलो मे घूमते फिरते हैं, उन उल नामक पशुओं भेड़ियों , भालुओं और राक्षसों को हमारे यहाँ से दूर करके हमें निर्भय बनाएँ । शान्तिप्रद सुगन्धि सम्पन्न, सुखदायी अन्न को देने वाली , पयस्वती मातृ–भूमि हमें उपभोग सामग्री और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली बनी रहे तथा हमारे जीवन का सुखमय आधार बनी रहे । यज्ञादि से परिस्कृत (प्रदूषण मुक्त) वायुमण्डल से प्राप्त होने वाली वर्षा के कारण कृषि भूमि की खाद्यान्न उत्पादन क्षमता बढ़ती रही तथा भोज्य पदार्थो के प्रचुर भण्डार प्रकट होते गये। भोजन की प्रचुरता का स्थायी लाभ पाकर ही आर्य –संस्कृति एवं जनसंख्या की उत्तरोत्तर–वृद्धि होती रही। इसी घटना–क्रम को मातृभूमि में पृथ्वी के आकार का बढ़ना माना गया है।

(ङ) मानवीय तत्व

मातृ–भूमि सूक्त में पृथ्वी के स्थल–खण्ड भारतवर्ष नामक भूखण्ड में निवास करने वाले उस समाज का उल्लेख है जिसे 1920 मे वर्नाडस्काई आदि भूगोल के कुछ विद्वानों ने Noosphere की संज्ञा दी। दूसरे शब्दों मे भूमि–सूक्त मे मानव का बौद्धिक जगत् वर्णित है। जिसमें प्राकृतिक पर्यावरण और मानव–क्रिया– कलापों के बीच एक शुद्ध बौद्धिक और आध्यात्मिक अन्तःसम्बन्ध स्थापित किया जा चुका था । बौद्धिक मानव समाज पृथ्वी को एक तरफ गाय–सदृश्य पयस्विनी और ज्वालामुखी विस्फोट, भूकम्प बाढ़ ,अनावृष्टि तथा हिंसक जीव–धारियों के कारण, दूसरी तरफ राक्षसी के रूप में देखी जा चुकी थी ।

भूमि–सूक्त के अनुसार , सत्यनिष्ठा, विस्तृत यथार्थ–बोध ,दक्षता, क्षात्रतेज (वीरत्त्व) तपश्चर्या, ब्रह्मज्ञान और त्याग–बलिदान की भावना से युक्त मानव ही मातृ–भूमि का पालन–पोषण और संरक्षण करते हैं। मातृ–भूमि हमें विस्तृत निवास स्थान प्रदान करती रही है । हमारी भारत–भूमि के वेद कालीन मनुष्यों के मध्य (गुण, कर्म और स्वभाव की विभिन्नता होते हुए भी) परस्पर अत्याधिक सामन्जस्य और ऐक्यभाव रहा है। हमारी मातृ–भूमि की रोगनाशक औषधियाँ एवं खाद्यान्न फसलें तथा विभिन्न प्रयोग –योग्य वनस्पतियाँ हमारी कामना पूर्ति और यशोवृद्धि का साधन रही हैं। हमारी इसी मातृ–भूमि में कृषक लोग, शिल्पकर्म विशेषज्ञ तथा उदयमी लोग अत्यधिक संगठित रहे हैं। हमारी इसी वसुन्धरा पृथ्वी की सुरक्षा हेतु प्राचीन ऋृषियों ने अनेक प्रकार के पराक्रमी यज्ञ कर्म सम्पन्न किये हैं, देव–समर्थक वीरों ने आसुरी शक्तियों से धर्म–युद्ध किया है, देवासुर संग्राम जीता है। ऐसी हमारी मातृ–भूमि हमारे ज्ञान–विज्ञान, शौर्य–तेज–वीर्य और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाली बनी रही है । हमारी मातृ–भूमि के सभी क्षेत्रों में चारों ओर निर्भय होकर विचरने वाले परिव्राजक और संन्यासी, शीतल जल की भाँति समदृष्टि–सम्पन्न उपदेश देते हुए रात–दिन सजग होकर ज्ञान का संचार करते रहे हैं। जो भूमि हमें सभी प्रकार के अन्न, जल और दूध–घी इत्यादि प्रदान करती रही है, वह मातृ–भूमि हमारी तेजस्विता और संस्कृति की प्रखरता को बढ़ाती रही है । इस मन्तव्य के साथ हमारी पयस्विनी भूमि पर सभी ओर वेदिकाएं बनाकर विश्वकर्मादि अथवा सृजनशील मनुष्य यज्ञ का विस्तार करते रहे है। जहाँ स्वच्छ तथा उत्पादक आहुतियों के साथ यज्ञीय मण्डप केन्द्र तथा आधार स्थापित किये जाते रहे हैं, और सदैव यज्ञीय उदघोष होते रहे हैं। हमारी वर्तमान भूमि हम सबका विकास करती रही है। इसीलिए यह आर्य भूमि ,यज्ञीय परमार्थ कर्मो की वेदी कही गयी है । हमारी मातृ–भूमि हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या को आवासीय /क्षेत्र प्रदान करती रही है और इसीलिए हमारी आर्य–भूमि का मानवीकृत (जन–संकुलित) क्षेत्र बढ़ता रहा है और आर्यावर्त का विस्तार होता रहा है । जिस भूमि पर यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठान विधिवत किये जाते रहे हैं और यज्ञों में मनुष्यों द्वारा देवताओं (प्रकृति के दिव्य एवं शाश्वत् तत्वों) के लिए आहुतियाँ प्रदान की जाती रही है, यज्ञादि कार्यो से प्रदूषण रहित पर्यावरण वाली भूमि पर श्रेष्ट अन्न

Scanned with OKEN Scanner

और स्वच्छ जल का लाभ पाकर , बढ़ते हुऐ मानव–समुदाय, दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन धारण करते रहे हैं। वह भूमि अनन्त काल तक हमें प्राण और आयु प्रदान करती रहे। हमारी मातृ–भूमि अपने दिव्य संसाधनों से सम्पन्न रहती हुई हमे पूर्ण आयुष्य प्राप्त करने योग्य बनाती रही है । मातृ–भूमि सूक्त में उपरोक्त तथ्यों के तारतम्य में कामना की गयी है कि हमारे वीर पुरूषों, ज्ञान एवं धर्म–प्रेमी स्त्री–पुरूषों में और हमारे पालतू पशुओं (गाय, हाथी, घोड़े आदि) तथा अविवाहित कन्याओं मे, मातृ–भूमि की जो गन्ध तेजस् अथवा सृजन शीलता (सृजनात्मक शक्ति निहित रही है, हमारे सामान्य समाज के अन्तः करण में भी समाविष्ट हो । हमसे कोई द्वेष करने वाला न हो । मातृ–भूमि मे उपलब्ध पार्थिव और सौर ऊर्जा से संतुलित पर्यावरण का भोग करते हुए हमारे समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को सुरक्षित रखते हुए सौ वर्ष तक का स्वस्थ जीवन पूरा करता रहा है । ज्ञात प्राचीन काल से हमारी पृथ्वी पर प्राणि–समूह के हितैषी कान्तदर्शी ऋषियों ने सप्त सत्र वाले ब्रह्म–यज्ञ किये और तपः पूत वाणी द्वारा वन्दनाएँ की । आज मनुष्य प्रकृति का केवल दोहन ही करना चाहता है, उसके पोषण और संरक्षण और उसकी उपयुक्त प्रकिया दोनों को वह भुला चुका है। यही कारण है कि मनुष्य को प्रकृतिगत असंतुलन (इकॉलाजिकल इम्बैलेन्स) के कारण उत्पन्न प्रदूषण से लेकर अतिवृष्टि, अनावृष्टि भूकम्प जैसे प्राकृतिक विप्लवों को दण्ड के रूप में झेलना पड़ रहा है। वेद द्वारा निर्दिष्ट यज्ञीय जीवन शैली अपना कर मनुष्य परमपिता के प्रतिनिधि के रूप में अपनी स्थूल सामर्थ्य का प्रयोग करते हुए यज्ञीय आयोजनों से भूमण्डल पर स्वर्गीय परिस्थितयाँ उत्पन्न कर सकता है । हमारी मातृ–भूमि में अनेक मानव–समूह प्रसन्नता से गाते तथा नृत्य करते रहे हैं और सामान्य मनुष्य भी शौर्योचित गुण से परिपूर्ण रहकर, राष्ट्र के संरक्षण के लिए युद्ध–रत होते रहे, फलतः शत्रु रूदन करते रहे हैं , और विश्व विजय के नगाड़े बजाये जाते रहे हैं। प्राकृतिक सीमाओं और मानवीय शौर्य से युक्त, हमारी मातृ–भूमि हमारे शत्रुओं को दूर भगाकर हमें भयमुक्त और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने और उत्तरोत्तर प्रगति करते रहने की भौतिक सुविधाएँ प्रदान करती रही हैं । अनेक प्रकार की धार्मिक मान्यता वाले और विभिन्न भाषा–भाषी जन–समुदायों को, एक परिवार के रूप में आश्रय देने वाली, स्थिर स्वभाव वाली मातृ–भूमि गाय के दूध के समान ही असंख्य ऐश्वर्य हमारे लिए प्रदान करने वाली रही है । हमारी समतल वक्ष–स्थलवाली मातृ–भूमि में मनुष्यों के आवागमन हेतु राजमार्गो तथा ग्राममार्गो की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। ये मार्ग , रथ और गाड़ियों के चलाये जाने योग्य थे, जिनपर परोपकार–रत सज्जन और स्वार्थरत धनार्थी, दोनों तरह के लोग विचरण करते थे। इन मार्गो को चोरों और शत्रुओं के भय से मुक्त रखने हेतु मातृ–भूमि से प्रार्थना की जाती थी कि हम कल्याणकारी मार्ग से जाते हुए विजय प्राप्त करें, और ये विभिन्न मार्ग हमारी भौतिक प्रगति के स्थाई आधार बने रहें । भूमि–सूक्त में ग्रामस्तर से लेकर राष्ट्रस्तर के विकास विस्तार और शक्ति–सम्पन्न होने के विभिन्न प्राकृतिक एवं मानवीय पहलुओं के प्रति, चेतना का विभिन्न प्रकार से उल्लेख है। प्रत्येक गॉव ,नगर , वन सभा की स्थापना एवं प्रगति हेतु विकास मन्त्रणाओं तथा धर्मयुद्ध या संग्राम के पहले मातृ–भूमि की स्तुति की जाती थी। राष्ट्रीय चेतना के रूप में कामना की गयी थी कि हम अपने राष्ट्र के विषय में जो भी उच्चारण, स्तुति तथा उद्घोष करें , वह हित –कर और मधुरता से भरा हुआ हो। हम जो कुछ देखें वह हमारे लिए प्रिय, सहायक और कल्याणकारी हो।हम तेजस्वी और वेग–सम्पन्न हो ताकि आक्रान्ताओ (हमलावरों और आततायीयों) का तत्काल संहार कर सके । 'वन्दे मातरम्' के राष्ट्रगान मे भी मातृ–भूमि की स्तुति वैदिक भावना के अनुरूप है। राष्ट्रीय भावना को प्रबल और सामूहिक बनाने के लिए, मातृ–भूमि की स्तुति मूल रूप से आवश्यक है। अन्त में प्रार्थना की गई है कि हे मातृ–भूमि! आपमें उत्पन्न सभी लोग निरोग, क्षयरोग आदि से रहित होकर परस्पर मैत्री भाव रखने वाले हो। हम सब दीर्घ आयुष्य को प्राप्त करते हुए मातृ–भूमि के लिए हवि–प्रदान करने वाले तथा यज्ञ कर्म द्वारा पृथ्वी के पर्यावरण को प्रदूषण रहित करने वाले बनें। हम, प्रकृति और पृथ्वी के स्वास्थ्य (Health of Nature) हेतु प्रयास करने वाले बनकर , दीर्घ–आयु रहें। हे मातृ–भूमि! आप हमे कल्याणकारी परिस्थितियों और प्रतिष्ठा से युक्त रखें। ज्ञातव्य है कि

Scanned with OKEN Scanner

मातृ–भूति सूक्त में वर्णित पर्यावरण , अपने अजैविक और जैविक घटको के लिए, नदी–घाटी सभ्यता के अनुरूप है क्योंकि आर्यावर्त्त का विस्तार पश्चिम में सिन्धु तथा पूर्व में गंगा तक था। दोनों नदी–प्रवाहों के बीच स्थित सरस्वती तथा दृशद्वती को सारस्वत प्रदेश की प्रमुख नदियाँ माना गया है। हमारी वैदिक मातृ–भूमि में कहीं भी मरूस्थल तथा दलदली भूमियों का उल्लेख नहीं है।

वर्तमान भारतीय भौगोलिक दृष्टिकोण और विवरणों को, वैदिक सभ्यता के अजैविक और जैविक कारको से, प्रत्यक्ष रूप से जोडने का प्रयास इस शोध–लेख मे किया गया है ताकि भारतीय भूगोल के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए उसके प्राचीन विशद वाङ्मय को जान लेने की प्रेरणा जागृत हो सके। भूगोल ,मानवीय किया कलापों के प्राचीन और वर्तमान रंग–मंच का अध्ययन करता है, और इस रंग–मंच के दो प्रमुख पहलू भौतिक और मानवीय किंवा अजैविक और जैविक घटक होते हैं। हमारे वैदिक ऋषि (विद्वान) पर्यावरण की इस समग्रता को पूर्ण रूप से जानते थे। इसीलिए प्राचीन अर्थात् वैदिक रंग–मंच के लिए आधार भूत पर्यावरण के तत्कालीन घटकों का कियात्मक विवरण भूमि–सूक्त मे दिया गया है।

भूगोल की अनेक एटलसों में क्रमिक हिमानीकरण तथा जल–प्लावन का उल्लेख है। भौतिक भूगोल के प्रमुख विद्वान आर्थर होम्स ने भी भारतीय वैदिक गणनाओं को अंगीकार किया है । इसलिए भारतीय भूगोल के विद्वानों को अपने वैदिक कालीन पर्यावरण, मानवीय विकास और पर्यावरण–मानव सह–अस्तित्व को जानना एक नैतिक दायित्व है।, इस दायित्व की पूर्ति हेतु, आज के भूगोल के छात्र–छात्राओं को, अथर्ववेद में वर्णित भू–पर्यावरणीय गतिविधियों को समझना श्रेयस्कर होगा।

सन्दर्भ सूची –

1. Fitting, A. : Tasks and Aims of comparative physiology on a Geographical Basis June, 19[illegible]
2. Tansley, A. G : Practical Plant Ecology, London.
3. जैन, एस० एम० : भौगोलिक चिन्तन का विकास।
4. Sigh, R.L. : Ecology of Land-Use and Rural Trans formation in India. Dec. 17, 1987.
5. North Rop, F.S.C. in : Man's Role in Changing the Face of the Earth. 1962 Pages 1057, 1064.
6. Buck J. Lossing : The Lard-use in China.
7. Semple, Miss E.C. : Influences of Geographic al Environment 1911 Page 1-2.
8. Jug Suraiya : I AM GAIA, "EARTH MOTHER Apr 22, 2007 "Times of India News Pa[illegible]
9. Mukherji, R.K. : Geographical Foundations of Indian Culture.
10. आचार्य श्री राम शर्मा : गायत्री हवन विधि Page .19।
11. Nicholson, Max : The Environmental Revolution 1972 Page 315.
12. श्रीवास्तव तथा राव : पर्यावरण और पारिस्थैतिकी वसुन्धरा प्रकाशन पेज न० 6, 7।
13. K.M.L. Agrawal : भौतिक भूगोल 1987 साहित्य भवन आगरा पेज नं० 388।
14. श्री काशीस्थधर्मसभा सम्मतम् मुदक–ज्योतिष प्रकाश प्रेस 345, भेलबा तरना, वाराणसी द्वारा प्रकाशित पंचाग पत्रिका
15. Blache, V. de la : Principales of Human Geography.
16. Subodh Varma: Global Warning, "Earth on Fire" The Times of India, New Delhi Wednesday. Nov. 28, 2007.
17. Mc Crindle : Ancient India page 45.
18. Max Muller : Rg Veda Samhita page 46.
19. श्रीराम शर्मा आचार्य : ऋग्वेद भूमिका , पॉच प्रकार के यज्ञ का वर्णन।
20. श्रीराम शर्मा आचार्य तथा श्रीमती भगवती देवी : अथर्ववेद संहिता भाग दो।
21. The Great World Atlas Page 112-113.